15

अग्निसूक्त

वेदोऽखिलधर्ममूलम्। सभी धर्मो का मूल वेद ही है। संसार में चार वेद है। वे वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद है। उन चारो वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम है। ऋग्वेद का प्रथम सूक्त अग्निसूक्त है। संसार में प्राप्त साहित्य का यह प्राचीनतम सूक्त है। यहाँ पर अग्नि की स्तुति की गई है। वेद में अग्नि बहुत प्रसिद्ध देवता है। ऋग्वेद में लगभग २०० सूक्तो में अग्नि की स्तुति प्राप्त होती है। ऋग्वेद का प्रथम पद भी 'अग्निम्' यह है। इस पाठ में अग्निसूक्त के नौ मन्त्र है। और वहाँ सायणाचार्य ने भाष्य लिखा है। इस पाठ में उसी भाष्य का अनुसरण करके व्याख्या दिया गया है। इस अग्निसूक्त के मधुच्छन्दा ऋषि, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता हैं। अग्नि शब्द का अर्थ होता है - जो देव यज्ञ में दी गई हवि देवताओं के लिए लेकर के जाता है वह अग्नि है। ऋग्वेद में तीन प्रमुख देवों में अग्नि का दूसरा स्थान है। अग्नि का मानव जीवन के साथ दृढता से सम्बद्ध है। सम्पूर्ण घर के कार्यों में अग्नि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रत्येक घर में इसका निवास है। अग्नि हि ऐसा देव है जो जन्म से आरम्भ करके मृत्युपर्यन्त मनुष्य के साथ ही रहता है। अग्नि के द्वारा ही सम्पूर्ण संसार का प्रकाश हुआ। अग्नि ही प्राचीन ऋषियों का प्रधान था। क्योंकि अग्नि से ही यज्ञ भोजन आदि और शीतनिवारण होता था।

इस पाठ में कुछ अन्य आचार्यो के मत का भी संग्रह किया गया है। टिप्पणी रूप से उसको प्रकट किया गया है। टिप्पणी में सूक्त का ज्ञान कराने के लिए उपयोगी विषय दिया हुआ है। टिप्पणी में स्थित मत अधिक जिज्ञासु के लिए विशेष रूप से दिया हुआ है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को समझ पाने में;

टिप्पणियाँ

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में समर्थ हो पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ होंगे;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ जानने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जानने में समर्थ होंगे;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक एवं लौकिक के मध्य में भेद को समझ पाने में;
- सूक्त का अर्थ जान करके सूक्त के महत्व को समझेंगे;
- वैदिक शब्द रूपों को जान पाने में;
- सूक्त तात्पर्य और सूक्त तत्त्व को जान पाने में;
- अग्निसूक्त में अग्नि का वर्णन जैसा है वैसा समझ पाने में;
- अग्नि क्या-क्या करती है यह भी जान पाने में;
- किस प्रकार की अग्नि स्तुत्य होती है यह जान पाने में।

15.1 मूलपाठ - अग्निसूक्त (ऋग्वेद का १.१)

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥२॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥३॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥५॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥७॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥९॥

15.1.1 मूलपाठ की व्याख्या

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥

पदपाठ-अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नऽधातमम्॥१॥

अन्वय - यज्ञस्य पुरोहितं देवं होतारम् ऋत्विजं रत्नधातमम् अग्निम् ईळे।

व्याख्या - अग्नि देव की स्तुति करता हूँ। 'ईड् स्तुतौ' यह धातु है। डकार के स्थान पर ळकार बह्वृचाध्येतृसम्प्रदाय में प्राप्त होता है। और भी पढ़ा गया है अज्मध्यस्थडकार को ळकार बह्वृचा में जानना चाहिए। अज्मध्यस्थढकार को ळ्हकार यथा क्रम से होता है। मन्त्र का होता के प्रयोज्य होने से मैं होता स्तुति करता हूँ, यह अर्थ प्राप्त होता है। किस प्रकार की अग्नि? यज्ञ का पुरोहित। जैसे राजा का पुरोहित उसके अभीष्ट को पूर्ण करता है, वैसे अग्नि भी यज्ञ का अपेक्षित होम को पूर्ण करता है। अथवा यज्ञ का सम्बन्धि पूर्वभाग में आवहनीय रूप से अवस्थित पुनः किस प्रकार का है? होता ऋत्विज है। देवों का यज्ञ में होतृनाम का ऋत्विग् अग्नि ही है। और सुना भी जाता है - 'अग्निर्वै देवानां होता' (ऐ० ब्रा० ३. १४) इति। पुनः वह अग्नि किस प्रकार की है? रत्न को धारण करने वाली यागफल रूपों के रत्नों को विशेष रूप से धारण अथवा पोषण करने वाली।

टिप्पणी - अग्निमीळे अग्नि से याचना करता हूँ। यज्ञ का देव दान देने से, प्रकाश करने से, प्रकाशित होने से अथवा द्युस्थान में रहने से होता है। उस यज्ञ का दाता, प्रकाश देने वाला अथवा प्रकाशित करने वाला यह अग्नि है ऐसा कहा गया है। द्युस्थानीय कैसे हुआ - यद्यपि अग्नि पृथिवी स्थानीय है फिर भी देवों के प्रति हवि ले जाने से द्युस्थानी होता है। जो दे, वह ही देवता। अर्थात देव ही देवता है। मन्त्र द्वारा आह्वान करने के कारण होता कहलाता है। रमणीय धन का दाता और धारण करने वाला। (स्कन्दस्वामी) - शान्तिपौष्टिक कर्मों के द्वारा जो राजा को विपत्ति से रक्षा करता है वह पुरोहित कहलाता है। यज्ञ की आपदाओं को हटाने वाला यह अर्थ है। पूर्वदिशा में निहित आवहनीय स्थापित पुरोहित यह भी अर्थ है। रत्न धन का नाम है। धन का विशेष रूप से दाता अग्नि है। उस अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।

सरलार्थ - यज्ञ का प्रकाशयुक्त पुरोहित अग्नि है। अथवा यजमान के सम्मुख अग्नि स्थित है। वह देवों का यज्ञ में आह्वान करती है। सर्वाधिक रत्नों को वह धारण करती है। इस प्रकार की जो अग्नि है उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

व्याकरण

यज्ञस्य – यज्-धातु से नङ करने पर षष्ठी एकवचन में यज्ञस्य यह रूप बनता है।

देवम् – दिव्-धातु से अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में देवम् यह रूप बनता है।

होतारम् – हूधातु से तृन्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में होतारम् यह रूप बनता है।

रत्नधातमम् – रत्नों को धारण करने वाली रत्नधा कहलाती है, रत्नधाशब्द से क्विप्प्रत्यय करने पर और तमप्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में रत्नधातमम् यह रूप बनता है।

इळे – स्तुति अर्थ में ईड्-धातु से लट उत्तमपुरुष एकवचन में इळे यह रूप बनता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥२॥

पदपाठ – अग्निः। पूर्वेभिः। ऋषिऽभिः। ईड्यः। नूतनैः। उत। सः। देवान्। आ। इह। वक्षति॥२॥

अन्वय – अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः सः देवान् इह आ वक्षति।

व्याख्या – यह अग्नि पूर्व पुरातन भृग्वङ्गिर आदि ऋषियों के द्वारा स्तुति की गई है, नूतन उत अभी हमारे द्वारा इसकी स्तुति की जाती है। वह अग्नि होती हुई इस यज्ञ में देवों को हवि भक्षण करने के लिये कहती है।

टिप्पणी – उत शब्द का विकल्प अर्थ है। फिर भी यहाँ पर च अर्थ अर्थात् समुच्चय अर्थ निपातन से है। अतः पूर्वतन और नूतन यह अर्थ प्राप्त होता है।। प्रथम मन्त्र में कहा गया है की मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। यहाँ पर स्तुति का क्या कारण है। अतः उस विषय के लिए यह दूसरा मन्त्र है। क्योंकि यह अग्नि पूर्वतन ऋत्विगों के द्वारा स्तुत्य है, नूतन के द्वारा भी स्तुत्य है। कुछ ऋषि, उसके रूप की स्तुति करते हैं। यह ही हेतु है की मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। इस सम्पूर्ण जगत में वह ही अग्नि देवों का यज्ञ में आवाहन कर सकती है, अन्य कोई भी नहीं।

सरलार्थ – अग्नि की प्राचीन और नूतन ऋषियों के द्वारा स्तुति की जाती है। इस प्रकार की जो अग्नि है वह देवों का यज्ञ में आवाहन करे।

व्याकरण

- **पूर्वेभिः** – पूर्वैः इसका वैदिक रूप है।
- **ईड्यः** – ईड्-धातु से ण्यत्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईड्यः यह रूप बनता है।
- **देवाँ** – देव शब्द का द्वितीया बहुवचन में यह रूप बनता है। पदान्त में स्थित नकार से पूर्व आकार किन्तु परे जो कोई भी स्वर रहता है तो नकार का लोप होता है। अपितु पूर्ववर्ण को अनुनासिक आदेश होता है।

- **वक्षति** – वह्–धातु से लृट स्यप्रत्यय करने पर यकार का छन्द में लोप होने पर वक्षति यह रूप बनता है। लेट् लकार में भी इस प्रकार का रूप सम्भव है।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥३॥

पदपाठ – अग्निना। रयिम्। अश्नवत्। पोषम्। एव। दिवेऽदिवे। यशसम्। वीरवत्ऽतमम्॥३॥

अन्वय – अग्निना दिवेदिवे पोषम् एव यशसं वीरवत्तमं रयिम् अश्नवत्।

व्याख्या – जो यह होता अग्नि की स्तुति करता है। उस अग्नि के द्वारा निमित्तभूत यजमान धन–धान्य को विशेष रूप से प्राप्त करता है। किस प्रकार का धन। प्रत्येक दिन जो पोषण करता हुआ उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कराता है, कभी भी विनष्ट नहीं होता है। दान आदि के द्वारा यश से युक्त होकर वीर के समान विशेष रूप से पुत्र सेवक आदि द्वारा वीर पुरुष के समान सुख को प्राप्त करो। धन के होने पर ही पुरुष सम्पन्न होता है।

टिप्पणी – इस प्रकार की अग्नि की स्तुति करो। जो स्तुति करता है वह स्तोता है, स्तुति करने से अग्नि से वह रत्न धन को प्राप्त करता है। केवल धन को ही नहीं। तो और क्या? पुष्टि को भी प्राप्त करता है। कब प्राप्त करता है? प्रत्येक दिन और प्रत्येक काल में और प्रत्येक क्षण में। सभी काल में यह अर्थ प्राप्त होता है। और क्या प्राप्त करता है? यश को। अर्थात् यश कीर्ति को प्राप्त करता है। किस प्रकार का यश? जिसके वीर पुत्र हो उसके समान। विशेष रूप से वीर के समान, वीरो में भी श्रेष्ठ वीर। अर्थात् अनेक वीरपुत्रों के साथ यश को प्राप्त होता है। इस प्रकार की अग्नि की जो स्तुति करता है, वह स्तुति का फल अग्नि से प्राप्त करता है। फलस्वरूप धन पुष्टि वीर पुत्र सहित और कीर्ति को प्राप्त करता है।

सरलार्थ – यजमान अग्नि के द्वारा धन को प्राप्त करता है। वह धन प्रतिदिन बढ़ता है, और यजमान धन का दान आदिकर्म करने से उसका व्यय होने से यश कीर्ति को प्राप्त होता है। और वह यश पुत्र आदिवीरपुरुष सहित प्राप्त होता है। अर्थात् बहुत पुत्र वीर हो। उस स्तुति से कीर्ति को प्राप्त हो।

व्याकरण

- **दिवेदिवे** – दिव शब्द का सप्तमी एकवचन में दिवेदिवे यह रूप बनता है।
- **पोषम्** – पुष्–धातु से घञ्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में पोषम् यह रूप बनता है।
- **यशसम्** – यश शब्द का अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यशसम् यह रूप बनता है। लोक में यशस् शब्द सकारन्त नपुंसकलिङ्ग में है।
- **वीरवत्तमम्** – वीर शब्द का मतुप्प्रत्यय करने पर और तमप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में वीरवत्तमम् यह रूप बनता है।
- **अश्नवत्** – अश्–धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में अश्नवत् यह रूप बनता है।

टिप्पणियाँ

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

पदपाठ - अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति॥४॥

अन्वय - अग्ने! यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि सः इत् देवेषु गच्छति।

व्याख्या - हे अग्नि तुम जो यज्ञ को विश्व की सभी दिशाओं के चारों ओर से व्याप्त हो, वह ही यज्ञ में देवों की तृप्ति के लिए स्वर्ग में जाती है। प्राच्य आदि चारों दिशाओं में आहवनीयमार्जालीयगार्हपत्य आग्नीध्रीय स्थानों में अग्नि है। परिशब्द से होता आदि की व्याप्ति की विवक्षा है। किस प्रकार का यज्ञ? अध्वर हिंसारहित। अग्नि के द्वारा सभी ओर से पालित यज्ञ को राक्षस आदि उसको हिंसित नहीं कर सकते।

टिप्पणी - विद्यमान नहीं है हिंसा जिसमे उसको अध्वर कहते है। हिंसा जिसमें नहीं है, वह अध्वर है। कहाँ हिंसा नहीं होती है? यज्ञ में सभी का अनुग्रह होता है हिंसा नहीं होती है। परन्तु ओषधियों का, पशूओं का, वृक्षों का और पक्षियों की हिंसा देखी जाती है। फिर भी हिंसारहित है, ऐसा किस लिये कहा जाता है? वहाँ पर विद्वानों का मत है -

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तीर्यञ्चः पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं मिथुनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितीः पुनः॥ इति

अर्थात् वनस्पति पशु, वृक्ष और तिर्यक योनि में स्थित पक्षी यदि यज्ञ में हिंसित है, फिर भी उनकी सद्गति होती है। हीनलोक की प्राप्ति नहीं होती है। वे उच्च श्रेणी को प्राप्त होते हैं। इत् शब्द का ही अर्थ है। 'स इद् देवेषु गच्छति' - वह ही देवों में जाता है यह अर्थ है। अर्थात् अग्नि के द्वारा सभी ओर से रक्षित यज्ञ ही देवों में जाता है। देव उस यज्ञ को ही स्वीकार करते है अन्य को नहीं। अग्नि के द्वारा सभी रक्षित यज्ञ को ही देव ग्रहण करते हैं यह अर्थ है।

सरलार्थ- इस मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की हे अग्नि तुम जैसे हिंसा रहित यज्ञ के चारों ओर व्याप्त होकर रहते हो वह यज्ञ अवश्य देवों की ओर जाता है।

व्याकरण

- **विश्वतः** - विश्व शब्द का तसिल् प्रत्यय करने पर विश्वतः यह रूप बनता है।
- **परिभूः** - परिपूर्वक भूधातु से क्विप् प्रत्यय करने पर परिभूः यह रूप बनता है।
- **असि** - अस्-धातु लट् मध्यमपुरुषैकवचने असि यह रूप बनता है।
- **गच्छति** - गम्-धातोः लटि प्रथमपुरुष एकवचन में गच्छति यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. अग्नि किसके द्वारा स्तुति करने के योग्य है?
2. डकार के स्थान में ळकार कब होता है?
3. पूर्वेभिः यह रूप कहाँ पर सही है?
4. किस प्रकार अग्नि की होता स्तुति करता है?
5. वक्षति यह रूप किस-किस लकार में सम्भव है?
6. दिव शब्द का सप्तमी एकवचन में क्या रूप होता है?
7. यजमान किस प्रकार का धन प्राप्त करता है?
8. अश्नवत् यह रूप किस धातु और किस लकार में है?
9. देवाँ यह रूप कैसे होता है?
10. धन के होने पर क्या होता है?
11. वीरवत्तमम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
12. पोषम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
13. परिभूः यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
14. ईड्यः इसका क्या अर्थ है?
15. अश्नवत् इसका क्या अर्थ है?
16. यशसम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
17. ईडे यहाँ पर क्या धातु है?

15.1.2 मूलपाठ की व्याख्या

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥५॥

पदपाठ – अग्निः। होता। कविऽक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवःऽतमः। देवः। देवेभिः। आ। गमत्॥५॥

अन्वय – होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः अग्निः देवः देवेभिः आ गमत्।

टिप्पणियाँ

व्याख्या – यह अग्नि देव अन्य देवों के साथ हविभोज के लिये इस यज्ञ में आयें। किस प्रकार की अग्नि? होता होम को पूर्ण करने वाला। कविक्रतु। कविशब्द यहाँ पर क्रान्त के अर्थ में न होकर के मेधाविनाम के अर्थ में है। क्रतु प्रज्ञान का अथवा कर्म का नाम है। वहाँ पर क्रान्तप्रज्ञ अथवा क्रान्तकर्मा है। सत्यझूठ से रहित फल को अवश्य देता है यह अर्थ है। चित्रश्रवस्तम। सुना जाता है यह श्रव कीर्ति है। विशेष रूप से अनेक कीर्ति से युक्त है।

टिप्पणी – यह अग्नि देवों का होता है। कविक्रतुः – इस अग्नि का कर्म सभी और गया होने से यह कविक्रतु है। अभिलषित फल को देने वाला सत्य है। चायृ पूजानिशामनयोः इस धातु से चित्र शब्द बनता है ऐसा स्कन्द स्वामी कहते है। चित्र चित्रीकरणे यह अन्य धातु है। उससे भी चित्रशब्द होता है। यह ही चित्रशब्द लोक में प्रचलित है। उसका अर्थ विचित्र है। अर्थात् विविध, बहुत प्रकार का यह है। श्रवः यह अन्न का नाम है, धन का नाम भी है। उसका कीर्ति यह भी अर्थ है। तमप्-प्रत्यय अतिशय अर्थ में जाना जाता है। अतः चित्रश्रवस्तम इसका एक से अधिक अर्थ होता है। वैसे ही विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध अन्न है जिसका वह चित्रश्रवस्तम है। विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध धन है जिसका वह चित्रश्रवस्तम कहलाता है। विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध कीर्ति है जिसकी वह चित्रश्रवस्तम है। ये इसके अर्थ हो सकते है।

सरलार्थ – अग्नि यज्ञ में देवता का आह्वान करता है। और वह उत्कृष्टबुद्धिसम्पन्न सत्यशील और कीर्तिमान् है। इस प्रकार का जो यह अग्नि है वह देवता के साथ यज्ञ में आये।

व्याकरण

- **कविक्रतुः** – कविः क्रतुः यस्य सः, बहुव्रीहिसमास है। प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- **चित्रश्रवस्तमः** – चित्रं श्रवः यस्य सः चित्रश्रवाः अतिशायी चित्रश्रवाः इति चित्रश्रवस्तमः, बहुव्रीहिसमास है। चित्रश्रवस् – शब्द से तमप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चित्रश्रवस्तमः यह रूप बनता है।
- **देवेभिः** – देवशब्द का तृतीयाबहुवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो देवैः यह रूप बनता है।
- **गमत्** – गम्-धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में गमत् यह रूप बनता है। सायणाचार्य के अनुसार से गम् – धातु लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥

पदपाठ – यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि। तव। इत्। तत्। सत्यम्। अङ्गिरः॥६॥

अन्वय – अङ्ग अग्ने! त्वं दाशुषे यत् भद्रं करिष्यसि, अङ्गिरः! तत् तव इत् सत्यम्।

व्याख्या – अङ्ग यह दुसरे को अपनी और अभिमुखी करने अर्थ में निपात है। हे अग्नि! तुम हवि का दान करने वाले यजमान के लिए कल्याण करते हो और अन्त में वह कल्याण तुम्हारे लिए ही है। सुख हेतु के लिए है यह अर्थ है। हे अङ्गिर! अग्नि और यह भी सत्य है और इसमें यहाँ पर भी किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है। यजमान को धन आदि संपत्ति मिलाने के बाद वह याग के द्वारा तुम्हे ही सुख पहुँचाता है।

टिप्पणी – अङ्ग यह निपात पादपूरण अर्थ में प्रयोग होता है। शीघ्र अर्थ में भी प्रयोग होता है। तब क्षिप्रं शीघ्रं दाशुषे यह अन्वय होगा। दाशृ दाने इस धातु से क्वसुप्रत्यय के योग से दाश्वस् शब्द होता है। उसका चतुर्थी में दाशुषे यह रूप बनता है। देना यह अर्थ है। यहाँ प्रकरण से हवि दान करने का यह अर्थ होता है। भद् कल्याणे सुखे च धातु से रक्-प्रत्यय के योग से भद्रशब्द बनता है। कल्याणम् यह उसका सामान्य अर्थ है। कौन, कब अपने कल्याण के लिए चिन्तन करता है यह देश काल पात्र भेद से अलग अलग है। अतः यहाँ पर प्रकरण में यजमान पशु-गृह-प्रजा-धन आदि को कल्याण मानता है तो पशु आदि यहाँ पर कल्याण हैं। वह ही उसको चाहिए। अतः सायाणाचार्य ने उसी प्रकार की व्याख्या की है। वस्तुतः हम सुख को ही चाहते हैं। अतः सुख ही कल्याण है। फिर भी सुखसाधन भी कल्याणकारी कहलाते है। अतः जिसके लाभ से मनुष्य सुख का अनुभव करता है वह कल्याण भद्र कहलाता है। और वह प्रसङ्ग भेद से भिन्न हो सकता है। यास्काचार्य ने कहा है – भजनीय। भूतों के लिए। अपने से अन्य को रमाये। भजन सुनाने वाला जैसा श्रोता को मन्त्र मुग्ध कर देता है उसी प्रकार जो अन्य को प्रसन्न कर दे। इत्यादि अर्थ कहते है। इत् शब्द ही अर्थ में है। तवेत्तत् इसका तेरा ही यह अर्थ प्राप्त होता है। हे अग्नि तुम भद्र करोगे यहाँ पर कृधातु दान अर्थ में ग्रहण की गई है। उससे हे अग्नि तुम भद्र करोगी यह अर्थ प्राप्त होता है। अङ्गिरस् शब्द सकारान्त पुल्लिंग है। अङ्गिराः नाम ऋषि का है। उसका उत्पत्ति कारण अग्नि है ऐसा स्कन्द स्वामी मानते हैं। कैसे तो फिर हे अग्ने यह और अङ्गिरः यह सम्बोधन में है। अभेद के बोध होने से और वहाँ कहते है कार्यशब्द से कारण का अभिधान है। अर्थात् अङ्गिरः इससे अङ्गरस कारण अग्नि का बोध कराता है। शरीर का अवयव अङ्ग कहलाता है। शरीर अङ्गि कहलाता है। अङ्गि शरीर का स्थितिहेतु शरीर में खाए पिये रस से हुआ। खाये अथवा पिये पदार्थ से शरीर में रससृष्टि का निर्माण अग्निवश से होता है। अतः शरीर में रस का कर्ता अग्नि अङ्गिरस् कहलाता है। इस प्रकार जठराग्नि अङ्गिरा होती है। और रस लोहित-मांस-स्नायु- अस्थि-मज्जा-शुक्र। खाये हुए का इन रसरूप से परिवर्तन अग्नि करता है।

सरलार्थ – यहाँ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की हे अग्नि अथवा अङ्गिर तुम हविदान करने वाले यजमान के लिए जो कल्याण करोगे वह वस्तुतः आप का ही सुख साधन है।

व्याकरण

- **अङ्ग** – आकर्षित करने अर्थ में सम्बोधनात्मक निपात है।
- **दाशुषे** – दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में दाशुषे यह रूप बनता है।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥७॥

पदपाठ - उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्। नमः। भरन्तः। आ। इमसि॥७॥

अन्वय - दोषावस्तः अग्ने वयं दिवेदिवे धिया नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि।

व्याख्या - हे अग्नि हम अनुष्ठाता प्रत्येक दिन रात और प्रत्येक समय में बुद्धि से तुम्हें नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप आते है।

टिप्पणी - लौकिक संस्कृत में धातु से पूर्व व्यवधान रहित उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है। वेद में धातु उपसर्ग के मध्य में व्यवधान सम्भव है। कहीं-कहीं पर तो धातु से उत्तर भी उपसर्ग का प्रयोग होता है। उनकी (गत्ति उपसर्गसंज्ञा) प्राग् धातोः। छन्दसि परेऽपि। व्यवहिताश्च। इन तीन सूत्रों के द्वारा पाणिनीय प्रतिपादित अष्टाध्यायी में किया है। अतः इस मन्त्र में उप इस उपसर्ग का एमसि इस क्रियापद के साथ अन्वय होता है। समीप आओ यह उसका अर्थ है। दोषावस्तः - वस आच्छादने यह धातु है। दोषा इसका रात्रि यह अर्थ है। रात अपने प्रभाव से प्रकाश को ढक लेता है वह दोषावस्ता, ऋकारान्त शब्द है। उसका सम्बोधन में यह रूप दोषावस्तः है। नम्-धातु से असुन्-प्रत्यय के योग से नमस् यह अव्यय बनता है। वह नपुंसकलिङ्ग में गिना जाता है। स्तुति अथवा नमस्कार यह उसका अर्थ है। भृधातु से शतृप्रत्यय के योग से भरत् यह प्रातिपदिक प्राप्त होता है। उसका पुल्लिंग प्रथमाबहुवचन में भरन्तः यह रूप बनता है। नमः भरन्तः यह अन्वय है। यहाँ पर नमः कर्मरूप से ग्रहण किया गया है। अर्थात् नमस्कार को पूर्ण करते हुए यह अर्थ है। हे अग्नि प्रतिदिन जैसी हमारी बुद्धि है वैसा ही नमस्कार अथवा स्तुति करते हुए हम तेरे समीप आते हैं।

सरलार्थ - इस मन्त्र में यज्ञकार अग्नि के प्रति कहते है की हम दिन और रात बुद्धि से युक्त आप को नमस्कार करते हुए और हम तेरे समीप आते हैं।

व्याकरण

- **भरन्तः** - भृधातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में भरन्तः यह रूप बनता है।
- **इमसि** - इधातु से लट् उत्तमपुरुष बहुवचन में इमसि यह रूप बनता है। वेद में कभी इदन्तो मसि इस सूत्र से मकार के स्थान में मसि यह आदेश होता है।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

पदपाठ - राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे ॥८॥

अन्वय - राजन्तम् अध्वराणां गोपाम् ऋतस्य दीदिविं स्वे दमे वर्धमानम्।

व्याख्या – पूर्वमन्त्र में त्वाम् उपैम इससे अग्नि को उद्दिश्य करके कहा है। तुम किस प्रकार की हो। हिंसा रहित यज्ञों का प्रकाशक, सत्य का रक्षक स्वयं प्रकाशमान अपने स्थान से बढ़ने वाले (अग्नि के पास हम प्रतिदिन आते है)। अध्वरों का राक्षसों द्वारा किया गया हिंसारहित यज्ञों का गायों का रक्षक, सृष्टि का अपरिवर्तनशील विधान सत्य का अवश्य कर्मफल बार-बार प्रकाशित होता है। आहुति को धारण करने वाली अग्नि को देखकर शास्त्र प्रसिद्ध कर्मफल को स्मरण किया। अपने घर में यज्ञशाला में हवि के द्वारा बढ़ता है।

टिप्पणी – पूर्वमन्त्र कहा गया है की तुम अग्नि हमारे समीप आओ। वह अग्नि किस प्रकार की है। अपने आप प्रकाशित होता है। राजृ दीप्तौ इस धातु से शतृप्रत्यय के योग से राजत् यह प्रातिपदिक प्राप्त होता है। उसका द्वितीया एकवचन में रूप राजन्तम् यह प्राप्त होता है। प्रकाशमान यह अर्थ है। राजृ ऐश्वर्यकर्मा यह स्कन्दस्वामी मानते हैं। तब राजत् इसका ईशान का शासनकर्ता यह अर्थ है। किसका शासन अध्वर यज्ञों का यह है। गोपाम् – गायों की रक्षा करने वाला गोपा कहलाता है। उसको। ऋतम् – ऋ गतौ इस धातु से क्तप्रत्यय के योग से ऋतशब्द बनता है। ऋतशब्द के अनेक अर्थ वेद में ही प्राप्त होता है। सायणाचार्य के अनुसार कर्मफल को यह उसका अर्थ होता है। स्कन्दस्वामी के अनुसार उसका अर्थ ही यज्ञ प्रकृतमन्त्र में है। वेङ्कटमाधव के अनुसार उसका अर्थसत्य है। वेद में इसके अनेक अर्थ है। वहाँ प्रथम अर्थ है -ऋग्वेद में ऋत शब्द का अर्थ प्रकृति यह भी अधिकाशं रूप से प्राप्त होता है। द्वितीय अर्थ यह है की- जगत में सूर्य-चन्द्र-पृथिवी-नक्षत्र- ऋतु-दिन-रात इत्यादि सभी विशिष्ट नियम के अनुसार प्रवृत करता है। यह शाश्वत नियम है। इस नियम का उल्लङ्घन कोई नहीं करता है। यह नियम ही ऋत् है। अतः ऋत जगत का शासन करता है। जगत का पालक ऋत् है। जगत को चलाने के लिए कोई शाश्वत नियम ऋत है। तृतीय अर्थ है -यज्ञों के अनुष्ठान में देवों का आह्वान हविदान देवपूजा इत्यादि का कुछ स्थिर क्रम दिखाई देता है। यह ही एक नियम है। यह नियम ही ऋत है। यज्ञकर्म का नियमित ऋत है। चौथा अर्थ-यज्ञो का चालन ऋत से होता है कहा गया है। क्रमश ऋतशब्द यज्ञ अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। ऋत यज्ञ को कहता है। पाँचवां अर्थ-यज्ञानुष्ठान में यजमान का और ऋत्विजों का आचरण नियम ही व्रत कहलाता है। ऋत शब्द इस प्रकार नैतिकव्रत अर्थ में भी दिखाई देता है।

सरलार्थ – किस प्रकार की अग्नि के समीप यज्ञ करने वाले ऋत्विग जाते हैं। उसका ही वर्णन इस मन्त्र में कहा गया है की यह अग्निप्रकाश से युक्त, यज्ञों का रक्षक, कर्मफल का बार-बार स्मरण कराने वाला, यज्ञ से अपने स्थान में और यज्ञगृह में वृद्धि को प्राप्त करता है। इस प्रकार के अग्नि के समीप यज्ञकर्ता जाते हैं।

व्याकरण

- **राजन्तम्** – राज्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में राजन्तम् यह रूप बनता है।
- **दीदिविम्** – दिव्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर और द्वित्व करने पर द्वितीया एकवचन में दीदिविम् यह रूप बनता है।
- **वर्धमानम्** – वृध्-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में वर्धमानम् यह रूप बनता है।

टिप्पणियाँ

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥९॥

पदपाठ – **सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये ॥९॥**

अन्वय – अग्ने ! सः (त्वं) सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव। स्वस्तये नः सचस्व।

व्याख्या – हे अग्नि वह तुम हमारे लिए अच्छी प्रकार से अर्थात आसानी से पहुँचने योग्य हो। वैसे ही हमारे लिये कल्याणकारी विनाश रहित हो साथ रहना इस प्रकार किया गया है। वहाँ पर यह दोनों दृष्टान्त हैं। जैसे पुत्र के कल्याण के लिये पिता समीप ही रहता है उसी प्रकार आप भी हमारे कल्याण के लिए उनके समीप रहते हैं।

टिप्पणी – सूपायनः – सु+उप+इण् गतौ इस धातु से ल्युट्-प्रत्यय के योग से सूपायन शब्द निष्पन्न होता है। शुभागमन वाला, अच्छी प्रउपहार की वस्तु, सुलभ उपाय वाला सूपायनः कहलाता है। उपैति इसका अर्थ समीप जाता है। सुख से समीपगमन किया जा सके उस प्रकार की आप अग्नि हमारे लिए हो। सूपगमः सुख को प्राप्त हो। सु+अस् भुवि इस धातु से क्तिन्-प्रत्यय के योग से स्वस्ति यह शब्द बनता है। इसके अनेक अर्थ है, कुल परम्पपरा विनाश से रहित हो इस प्रकार एक अर्थ देखा जाता है। विनाश से रहित यह सायण का अर्थ है। सच् समवाये इस धातु से आत्मनेपद में लोट् थास होने पर सचस्व यह रूप बनता है। कल्याणकारी हो, हमारी रक्षा करो। अर्थात् हमको विनाश से हटा दीजिये अर्थात हमारी रक्षा करो।

सरलार्थ – इस मन्त्र में अग्नि को अनायास से प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है।यहाँ अग्नि के प्रति कहते हैं, हे अग्नि पिता जैसे पुत्र के कल्याण के लिए उसके समीप में रहता है, अनायास से ही उनकी प्राप्ति का विषय है जैसे तुम भी हमारे कल्याण के लिये अनायास प्राप्ति का विषय हो।

व्याकरण

- **सूपायनः** – सुपूर्वक और उपपूर्वक से इ-धातु से युच्प्रत्यय करने पर सूपायनः यह रूप बनता है। सुख से उपाय है जिसका वह सूपायनः कहलाता है।
- **भव** – भू-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में भव यह रूप बनता है।
- **स्वस्तये** – सुपूर्वक अस्-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में स्वस्तये यह रूप है। लौकिक में तो स्वस्ति यह अव्ययपद है।
- **सचस्व** – सच्-धातु से आत्मनेपद में लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में सचस्व यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. कविक्रतु: इसका क्या अर्थ है?
2. किस प्रकार की अग्नि देवों के साथ आओ?
3. गमत् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
4. अङ्ग- यह किस प्रकार का निपात है?
5. अङ्गिर: यह कह करके किसका सम्बोधन किया जाता है?
6. इमसि यहाँ पर क्या धातु है?
7. चित्रश्रवस्तम: इसका विग्रह और समास लिखो।
8. दाशुषे इसकी प्रकृति और प्रत्यय लिखो।
9. सूपायन: यहाँ पर धातु क्या है?
10. दोषावस्त: इसका क्या अर्थ है?
11. सचस्व यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
12. दीदिविम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
13. अध्वराणाम् इसका क्या अर्थ है?
14. भरन्त: यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
15. श्रव: इसका क्या अर्थ है?

15.2 अग्नि का स्वरूप

सभी वैदिक देवताओं में अग्नि ही पवित्रतम देवता है। ऋग्वेद में केवल अग्नि की दो सूक्तों में स्तुति देखी जाती है। इनको छोड़कर अन्य सूक्तों में भी देवताओं के साथ अग्नि की भी स्तुति की गई है। यद्यपि गुरुत्व की दृष्टि से इन्द्र से बाद में ही अग्नि का स्थान वैसे भी यज्ञप्रधान वेद का प्रत्येक मण्डल के आरम्भ में वह सम्बोधन के विषय को प्राप्त करता है।

वेद में द्यावा पृथिवी यह एक बहुत चर्चित देवता युगल है। इन दोनों के पुत्र होने की परिकल्पना से अग्नि पृथिवी पर रहती है। यह ही वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शन करने में प्रवृत्त निरुक्तकार ने सबसे पहले अग्नि की व्याख्या करने की इच्छा से कहा - ''अग्नि पृथिवी स्थानीय देव की प्रथम व्याख्या करेंगे। इससे पृथिवी स्थित यह देवता देवताओं का प्रथम देवता है यह अच्छी प्रकार

टिप्पणियाँ

से विदित ही है। वेद संहिताओं में सबसे प्रचानी होने से और ऐतिहासिकों के द्वारा समर्थित अग्निसूक्त का ही आरम्भ किया जाता है। वैसे भी वेद में कहा गया है – ''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।'' इति। गीतिप्रधान सामवेद का भी अग्न आयाहि वीतये इति अग्नि के आह्वान से ही आरम्भ प्राप्त होता है।''अग्निर्वै प्रथमो देवतानाम्'',''अग्निर्वै देवानामवमः", इत्यादि ब्राह्मणवाक्य देवताओं में अग्नि की प्रधानता को निःसन्देह प्रकट करते हैं।

वैदिक दृष्टि से यज्ञ ही श्रेष्ठतम वैदिक कर्म है। यद्यपि परवर्तन काल में यज्ञ शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग दिखाया जाता है, फिर भी यज्ञ ऐसा कहने पर अग्निहोत्र रूप अर्थ शीघ्र जाना जाता है। यह ही अग्नि होम को पूर्ण करती है, क्रान्तप्रज्ञा वाली झूठ से रहित विविधकीर्ति से युक्त ऐसी कीर्ति है। वैसे वेद में कहा गया है – ''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः" इति। इससे अग्नि के सहयोग से यजमान सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है। सबसे ऊपर वह यजमान के पिता भाई और सखा होता है। वैसा ही वेद के ऋक्संहिता में कहा गया है – ''अग्निं मन्ये पितरमग्निमपिमग्निं भ्रातरं सदमित् सस्वायम् ...." इति।

निरुक्तकार यास्क के अनुसार वेदो में अग्नि ही एक देव हैं। वह ही इन्द्रवरुण आदिनाम से अनेक रूपों में उसका वर्णन किया गया है। वैसे वेद में कहा गया है – ''त्वमग्न इन्द्रो वृषभः ... त्वं विष्णुः ... त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि'' इति। ऐतरेयब्राह्मण में अग्निः सर्वाः देवताः इस मन्त्रांश से अग्नि को सभी प्रकार के देवों से युक्त प्रतिपादित किया गया है।

अग्नि के सर्वज्ञ होने की भी कीर्ति है, क्योंकि वह यज्ञविषयक सभी कुछ जानती है। उससे ही उसका जातवेदा यह नाम रखा गया। वह अपने उपासकों में वररूप से पुत्र धन आदि की वर्षा करती है। वेद में कहा गया है – ''अग्निना रयिमश्नवत् .." इति। इस प्रसङ्ग में ''आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्" इस पौराणिकआख्यायिका का भी अनुसन्धान करना चाहिए। अग्नि ने दैत्यों का विनाश किया इस प्रकार की कीर्ति का भी कुछ लोग वर्णन करते हैं। मैक्डोनल्ड महोदय के अनुसार इन्द्र – इराणीय मनुष्यों के मध्य में बहुत समय पूर्व अग्निपूजा का प्रचलन था। उनके मत में इतालीय और ग्रीसदेश के निवासी अग्नि को ही विविध देवों को उद्दिश्य करके होम करते थे।

15.3 वेद में अग्नि का चरित्र चित्रण

याग ही आर्यों का इस लोक का और परलोक का साधन दोनों की उन्नति करने का एक ही धर्मसाधन के रूप में गणना की जाती है। याग में हि अभीष्टदेव को उद्दिश्य करके हवि के त्याग के द्वारा उसके अनुकूल से यजमान अपनी इच्छाओं की प्राप्ति करते हैं। और वह याग अग्नि के द्वारा ही सिद्ध होता है। अग्नि यदि यजमान के द्वारा दी गई हवी को उस देवता को प्राप्त नहीं कराता तो उस यजमान को अभीष्ट कहाँ से प्राप्त होता? अतएव वैदिक मन्त्र में इन्द्र से बाद में ही अग्नि को महत्व दिया गया है, उसके महत्व को प्रकट करने के लिए अग्नि देवता के दो सौ से अधिक सूक्तों में उसका वर्णन किया गया है।

अग्नि के केश से ही उसकी ज्वाला है। उसके दांत स्वर्ण से युक्त है। उसकी जिह्वा का आश्रय लेकर के ही देवहवि का भक्षण करते हैं। और कहा गया है 'अग्निर्वै देवानां मुखम्' 'अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानामि' इस प्रकार। अग्नि की अनेक पशुओं के साथ तुलना की गई है। कहीं पर उसकी नुकीले सींग धारण किये हुए बैल के समान तुलना की गई है। उत्पत्ति समय में वह गाय के बछड़े के समान ही होता है। जब वह लकड़ी के घर्षण से उत्पन्न तब वह देवों का वाहक है, देवों के प्रति दी गई हवि का वाहक घोड़े के समान ही यागरूप से रथ के साथ यजमान के द्वारा जोड़ा जाता है इस प्रकार का भी कहीं पर वर्णन प्राप्त होता है। वह ही दिव्य पक्षी है। और वह आकाश का बाज है। लकड़ी और घी उसका भोजन है। पिघला हुआ घी उसका प्रिय भोजन है। उसकी दिन में तीन हवि के द्वारा उपासना की जाती है। वह उस ज्वाला रूप से चमच के द्वारा देवों को हवि का वितरण करती है।

वह सूर्य के समान तेज है। जीमूतगर्भ की दामिनि के समान उसका प्रकाश है। वह केवल दिन में ही नहीं रात में भी अन्धकार को हटाकर सभी और प्रकाश फैलती है। जब वह अन्धकार रूपी तामस का अनुसरण करती है तो वह सम्पूर्ण जंगल को जलाती है, तब वह नाई के समान ब्लेड से पृथ्वी की दाड़ी को काटती है। उसकी ज्वालामदमस्त हाथी के समान भंयकर गर्जना करती है उसकी गर्जना बिजली के समान प्रतीत होती है। उसका लाल धुआँ गोल रूप से आकाश को स्पर्श करता हुआ नभ को छु लेता है। धूमकेतु जिस प्रकार स्थित है उसी प्रकार यह धुआँ भी द्युलोक में व्याप्त रहता है। वह दीप्ति से युक्त रक्त धुए को घोड़े ले जाते हैं। वह सारथी के समान यागरथ को चलाकर के अभीष्ट देवों को यागस्थान पर लेकर के आता है। 'आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैः' इति और 'स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्' इति प्रमाण है (मण्डलादि में अग्नि इन्द्र से)। वह द्यावापृथिवी के पुत्र हैं। कहीं पर जल से युक्त है ऐसी भी कीर्ति कही जाती है। देव आर्यो का मनुष्यों के मध्य में उनका दीपक से अग्नि की स्थापना की जाती है। इन्द्र अग्नि का भाई कहलाता है। अतः अग्नि के साथ उसका सम्बन्ध अन्य देवों की अपेक्षा से अधिक दृढ़ है।

उसकी उत्पत्ति के विषय में विविध पौराणिक तथ्य प्राप्त होता है। लकड़ी के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण अग्नि के माता पिता दो लकड़ी हैं। कहा जाता है की जन्म होने मात्र से ही शिशु अग्नि अपने माता पिता का भक्षण करता है। अग्निप्रज्वलक पुरुष के हाथ की दश अङ्गुली से ही अग्नि को धारण करने वाली ये दश धारण करने वाली धायीमाता है। जिनके बल से ही उत्पन्न होने से वह उससे भी अधिक शक्तिशाली बनने में कुछ समय लगता है 'सहसः सूनुं बलपुत्रः' यह उसका अभिधान्तर है। प्रतिदिन प्रातः काल जब अग्नि प्रज्वलित होती है, तब वह युवा के समान होती है। कोई भी यजमान अग्नि रूपी होता के बिना उस यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकता है।

'न हि देवों न मर्त्यो / महस्तव क्रतुं परः।' उपाख्यान के अन्तर से अग्नि की उत्पत्तिविषय के अन्य यह तथ्य समर्थन करता है की अग्नि बैल के समान जल से उत्पन्न होता है। इसलिए ही अग्नि को अपांनपात इत्यादि आख्या को धारण करता है, वह वैदिकवाङ्मय में पृथग् देवता के रूप में स्तुति को प्राप्त करता है। एक अन्य मत है की अग्नि प्रकाश से युक्त है। कोई मातरिश्वान् इस आख्या से भी अग्नि की उत्पति मानता है, कोई देव स्वर्ग से अग्नि को मर्त्यलोक में लेकर

टिप्पणियाँ

के आया। सूर्य भी अग्नि का अन्य मूर्ति रूप में कीर्ति है। इस प्रकार अग्नि की तीन रूपों से कल्पना की गई है। उसका तीन द्यु तीन शिर और तीन देहस्थान है।

'अग्ने त्री ते वाजिना त्री यधस्था / तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः
तिस्र उ ते तन्वो देववाता / स्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन्॥'

क्योंकि यह विश्व दो भागो में विभक्त है द्यावा और पृथिवी उन दोनों से जो उत्पन्न होने से वह अग्नि द्विजन्मा कहलाता है।

देवों की अपेक्षा अग्नि अधिक रूप से मनुष्यजीवन से सम्बन्धित है। अग्नि ही केवल एक देवता है जो स्थूल नेत्रों से प्रत्यक्ष होता है मनुष्यों को। अतः वह पृथिवी स्थानी देवों में मुख्य मानी जाती है। वह ही केवल गृहपति कहलाती है, क्योंकि कहा जाता है की, वह अतिथिरूप से यजमानों के एक घर से दूसरे घर की तरफ जाती है। वह स्वय अमर होती हुई मरणधर्म घरों में आश्रय को स्वीकार करती है। वह कुछ उपासकों की पिता है, कुछ का भाई और कुछ के पुत्र रूप में उसका वर्णन प्राप्त होता है। और कहा गया है –

'अग्नि मन्ये पितरमग्निमापिमग्नि / भ्रतरं सदमित् सखायम्' इति। और भी कहा गया है – 'स नः पितेव सूनवे / ऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।' वह मनुष्यों के द्वारा दी गई हवि देवों को प्राप्त कराती है। और देवों का भी यज्ञस्थल में आह्वान करती है। अतः वह देवों के द्वारा दूतरूप में लगाई गई और मनुष्यों के द्वारा दी हवि को लेकर के जाना है। क्योंकि अग्नि ही याग को पूर्ण करती है, उससे वह यज्ञ का ऋत्विग्, विप्र पुरोहित इन नामों से भी जानी जाती है। इसी प्रकार कुछ अन्यत्र स्थान पर होता, अध्वर्यु, ब्रह्मण इत्यादि नामों से भी जानी जाती है। यहाँ प्रसङ्ग से इस मन्त्र का यहाँ उल्लेख किया गया है –

'अग्निमीळे पुरोहितं /यज्ञस्य देवमृत्विजम्। / होतारं रत्नधातमम्॥' इति

अग्नि सर्वज्ञ है उसकी कीर्त्ति है क्योंकि वह यज्ञ विषयक सब कुछ जानता है। उससे जातवेदा यह उसकी संज्ञा है। वह अपने उपासको को वर रूप से पुत्रवित्तादि की वर्षा करती है। वेद में कहा गया है –

'अग्निना रयिमश्नवत्/ पोषमेव दिवेदिवे। / यशसं वीरवत्तमम्॥' इति।

इस प्रसङ्ग में 'आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनादि' ति पौराणिक आख्या का भी अनुसन्धान करना चाहिए। अग्नि दैत्य का विनाश करती है ऐसा भी कहीं पर वर्णन प्राप्त होता है। मैक्डोनाल्ड महोदय के अनुसार इन्द्र-इराणी मनुष्यों के मध्य में बहुत काल पूर्व से अग्निपूजा का प्रचलन था। उनके मत में इतालीय और ग्रीसदेश अग्नि के समान ही विविध देवों को उद्दिश्य करके होम करते थे।

प्राच्य विद्वानों के अनुसार अग्निरङ्गतेरिति विग्रह के अनुसारअग्-धातु से निप्रत्यय करने पर अग्नि शब्द बनता है। अग्नि अपने को विस्तृत करती हुई हवी स्थल को अपने आप ही लकड़ी जलाने

और हवि पकाने के लिए प्रेरित करती है यह अर्थ है। मैक्डोनाल्ड के मत में तो अग्नि यह शब्द 'एजा इल ..' इस ग्रीक्देवता के नाम से इसका भाषाविज्ञान समर्थित और उसी रूप में दिखाई देता है।

इग्निस् यह लातिनशब्द से संस्कृत का अग्निशब्द का ध्वनिगत और अर्थगत समानता पर विस्मय किया जाता है। निरुक्त के अनुसार तो एतिधातु से निष्पन्न होने से अयन शब्द से आकार को, अनक्ति-धातु से ककार को, और नयते से नी को लेकर के ककार के स्थान में गकार आदेश करने पर नी इसके ईकार को ह्रस्वादेश विधान करके अग्निशब्द निष्पन्न होता है, प्रत्यक्षवृत्ति परोक्षवृत्ति और अतिपरोक्षवृत्ति को आधार मान करके।

पाठ का सार

इस पाठ में अग्निसूक्त के नौ मन्त्र हैं। वहाँ आदि में अग्निमीळे पुरोहितम्... इति मन्त्र अग्निसूक्त का आदि मन्त्र विद्यमान है। वहाँ पर कहा गया है की अग्नि ही यज्ञ में सभी देवों का आवाह्न करती है। वह ही यज्ञ का पुरोहित है। वहाँ द्वितीय मन्त्र में कहा गया की अग्नि की किनके द्वारा स्तुति करनी चाहिए। कौन उसकी स्तुति करती है। कहा गया है की प्राचीन और पुरातन ऋषियों के द्वारा उसकी स्तुत्ति की जाती है। तृतीय मन्त्र में यजमान अग्नि से क्या प्राप्त करता है। कहा गया -धन को प्राप्त हो। और वह प्रत्येक दिन वृद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार दान आदिकर्म से यजमान यश को प्राप्त होता है। चतुर्थ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहा गया है की तुम जैसे तुम हिंसारहित यज्ञ के चारो और व्याप्त हो उससे वह यज्ञ अवश्य देवों की और जाता है। पञ्चम मन्त्र में कहा गया है की किस प्रकार की अग्नि देवता के साथ आती है। कहते है की वह अग्नि उत्कृष्ट बुद्धि सम्पन्न सत्यशील कीर्तिमान् है। षष्ठ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की तुम जो कल्याण करती हो वह वस्तुत: आपके कल्याण के लिए ही होता है। सप्तम मन्त्र में अग्नि के प्रति यजमान होता को जाने के लिए कहा गया है। वे अग्नि के प्रति जाना चाहते है। अब प्रश्न हो सकता है की किस प्रकार की अग्नि है। इसका उत्तर उसके अगले मन्त्र में ही कहा गया है की वह प्रकाश से युक्त, यज्ञ का रक्षक, कर्मफल को प्रकाशित करने वाला, यज्ञ में अपने स्थान को बढ़ाने वाला है। नौवें मन्त्र में अग्नि से अच्छी प्रकार से प्राप्ति के लिए कहा गया है। वहाँ उपमा से कहते है की पिता जैसे पुत्र के समीप में अनायास से ही प्राप्ति का विषय होता है, वैसे ही हे अग्नि तुम भी हमारे लिये हो। इस प्रकार से अग्नि के स्वरूप और महात्म्य को कहा गया है।

पाठांत प्रश्न

(अग्निसूक्त में)

1. अग्निस्वरूप का वर्णन करो।

अग्निमीळे पुरोहितम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्नः पूर्वेभि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्निना रयि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्ने यं यज्ञ ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

2. अग्निसूक्त का सार लिखो।

अग्निर्होता कविक्रतुः ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

यदङ्गदाशुषे ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

उप त्वाग्ने ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

राजन्तमध्वराणाम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

स नः पितेव ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. प्राचीन और नूतन ऋषियों के द्वारा।
2. अज्मध्यस्थ डकार के स्थान पर।
3. वेद में।
4. यज्ञ का पुरोहित, ऋत्विज, रत्न को धारण करने वाला।
5. लृट और लेट् में।
6. सभी समय में।
7. पुष्टि यश और वीर के समान।
8. अश्-धातु।
9. देवशब्द का द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है। पदान्त में स्थित नकार से पूर्व आकार किन्तु बाद में कोई भी स्वर रहता है, तो नकार का लोप होता है। अपितु पूर्ववर्ण को अनुनासिक आदेश होता है।
10. पुरुष।
11. वीरशब्द से मतुप्प्रत्ययऔर तमप्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।
12. पुष्-धातु से घञ्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

13. परिपूर्वक भू-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर।

14. स्तुति करके।

15. प्राप्त करता है।

16. यश शब्द से अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

17. ईड् धातु।

15.2

1. क्रान्तप्रज्ञा वाला अथवा क्रान्तकर्मा अर्थात अतीव अनामत यज्ञादि कर्मो को जानने वाला।

2. होता कविक्रतु सत्यअतिशयेण विविध कीर्ति से युक्त।

3. गम्-धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में गमत् यह रूप बनता है। सायणाचार्य के अनुसार से गम्-धातु लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

4. सम्मुख करने अर्थ में प्रयुक्त निपात है।

5. अग्नि का।

6. इधातु है।

7. चित्रं श्रवः यस्य सः चित्रश्रवाः अतिशायी चित्रश्रवाः इति चित्रश्रवस्तमः, बहुव्रीहिसमास है।

8. दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में दाशुषे यह रूप बनता है।

9. इधातु है।

10. रात और दिन।

11. सच्-धातु से आत्मनेपद लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।

12. दिव्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर द्वित्व द्वितीया एकवचन में।

13. राक्षसो द्वारा की गई हिंसा से रहित यज्ञो का।

14. भृ-धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।

15. कीर्ति।

॥ पन्द्रहवां पाठ समाप्त ॥